अष्टाक्षर महामंत्र
का
माहात्म्य

लेखक
प्रो० राधेश्याम रस्तोगी एम. ए., एल. एल. बी.
रस्तोगी टोला, लखनऊ (उ. प्र.)

प्रकाशक
"श्री वल्लभ विज्ञान" कार्यालय
यशोभवन, १, न्यू पलासिया, मार्ग–२
इन्दौर–१

मॉडर्न प्रिन्टरी लिमिटेड, इन्दौर.

अष्टाक्षर महामंत्र
का
माहात्म्य

लेखक
प्रो० राधेश्याम रस्तोगी एम. ए., एल. एल. बी.
रस्तोगी टोला, लखनऊ (उ. प्र.)

प्रकाशक
"श्री वल्लभ विज्ञान" कार्यालय
यशोभवन, १, न्यू पलासिया, मार्ग–२
इन्दौर–१

मॉडर्न प्रिन्टरी लिमिटेड, इन्दौर.

वेद, श्रीमद्भागवत, गीता एवं व्यास-सूत्रों का गहन अध्ययन करने के पश्चात्, श्रीवल्लभाचार्य जी ने यह निश्चयात्मक मंतव्य दिया कि "श्रीकृष्ण: शरणं मम" महामंत्र का जप कलियुग की समस्त आत्मिक कलुषताओं की महौषधि है । वस्तुतः उनके उपदेशों का सत्व हमें षोडश-ग्रन्थ की सुविख्यात कविता "नवरत्न" की अंतिम पंक्तियों में मिलता है, जिसमें कि वह कहते हैं कि जीव को दीनता एवं श्रद्धा से युक्त होकर, इस मंत्र का अनवरत उच्चारण करना चाहिये ।

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥

इस महामंत्र पर विचार करने के पूर्व धार्मिक सिद्धान्त श्रृंखला में जप के महत्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। हिन्दुओं की उपासना-पद्धति में साधारणतया, एवं वैष्णवों में विशेषकर, जप का एक विशिष्ट स्थान है। समस्त धर्माचार्यों एवं धर्मगुरुओं ने इसके गोपनीय महत्व को स्वीकार ही नहीं वरन् इसका समर्थन भी किया है। उनका यह मत है कि "जप से मनुष्य आत्मिक शुद्धता को प्राप्त होता है और आत्मिक बंधन से उसकी अंतिम मुक्ति विनिश्चित हो जाती है।" गीता में इसका रहस्ययुक्त माहात्म्य सुस्पष्ट है "यज्ञानाम् जपयज्ञोऽस्मि।" जप (भगवत्नाम का सतत उच्चारण) में किसी प्रकार की हिंसा अपेक्षित नहीं है। निरंतर जपाभ्यास से ईश्वर

का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है । अतः जपयज्ञ, समस्त यज्ञों में उत्तम है और इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के हेतु ही, भगवान ने इसे अपना स्वरूप बतलाया है ।

जप यथार्थतः एक स्तुति है । स्तुति की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की गई है । एक पाश्चात्य लेखक के अनुसार "स्तुति, आत्मा के अपने स्वामी ईश्वर के प्रति––निष्कपट, सार्थक एवं प्रेमपूर्ण भावों का अभिव्यक्तिकरण है ।" वह "हृदय की सर्वोत्कृष्ट अभिलाषा की स्वतः अभिव्यंजना है–हृदय में विकम्पित होने वाले उस छिपे हुए अनल का चलायमान होना है ।" स्तुति के संबंध में विचार करते हुए आचार्य गोपाल का यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है––

इस महामंत्र पर विचार करने के पूर्व धार्मिक सिद्धान्त श्रृंखला में जप के महत्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। हिन्दुओं की उपासना-पद्धति में साधारणतया, एवं वैष्णवों में विशेषकर, जप का एक विशिष्ट स्थान है। समस्त धर्माचार्यों एवं धर्मगुरुओं ने इसके गोपनीय महत्व को स्वीकार ही नहीं वरन् इसका समर्थन भी किया है। उनका यह मत है कि "जप से मनुष्य आत्मिक शुद्धता को प्राप्त होता है और आत्मिक बंधन से उसकी अंतिम मुक्ति विनिश्चित हो जाती है।" गीता में इसका रहस्ययुक्त माहात्म्य सुस्पष्ट है "यज्ञानाम् जपयज्ञोऽस्मि।" जप (भगवत्नाम का सतत उच्चारण) में किसी प्रकार की हिंसा अपेक्षित नहीं है। निरंतर जपाभ्यास से ईश्वर

का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है । अतः जपयज्ञ, समस्त यज्ञों में उत्तम है और इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के हेतु ही, भगवान ने इसे अपना स्वरूप बतलाया है ।

जप यथार्थतः एक स्तुति है । स्तुति की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की गई है । एक पाश्चात्य लेखक के अनुसार "स्तुति, आत्मा के अपने स्वामी ईश्वर के प्रति--निष्कपट, सार्थक एवं प्रेमपूर्ण भावों का अभिव्यक्तिकरण है ।" वह "हृदय की सर्वोत्कृष्ट अभिलाषा की स्वतः अभिव्यंजना है–हृदय में विकम्पित होने वाले उस छिपे हुए अनल का चलायमान होना है ।" स्तुति के संबंध में विचार करते हुए आचार्य गोपाल का यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है--

"स्तुति न तो केवल मानसिक क्रिया है, न केवल बौद्धिक प्रयास अथवा स्मरण शक्ति का कार्य है, अपितु अपने स्वामी के सन्निकट पहुँचने के हेतु आत्मा का उत्थान है। शारीरिक दुर्बलताओं, मानसिक विषमताओं, बौद्धिक व्यतिक्रम एवं आत्मिक वक्रताओं का मर्मस्पर्शी आभास, ईश्वर की सर्वतोमुखी पूर्णता का, उसकी दीनों का आर्तनाद सुनने की व असहायों का संरक्षण-भार लेने की तत्परता का तीव्र अंतर्ज्ञान, ही भगवत् स्तुति का कारण है। स्तुति का माहात्म्य, हार्दिक उद्गारों अथवा मन की कल्पना शक्ति में केवल नहीं निहित है, अपितु ईश्वर की अनिर्वचनीय, कल्पनातीत लीलाओं व चमत्कारों पर दृढ़ विश्वास में है। स्तुति में, दीनता-प्रेरित

आत्म-समर्पण, पश्चात्ताप की उग्रता एवं श्रद्धा में विश्वास अंतर्निहित है । वह कोई भाषा-चातुर्य नहीं, अपितु गंभीर उत्सुकता है, आश्रय हीनता की परिभाषा नहीं, वरन आश्रय की परमावश्यकता का तीक्ष्ण अनुभव है ।"

यदि जप इतना महत्वपूर्ण है, तो यह प्रश्न उठता है कि भक्त किस मन्त्र का आश्रय ग्रहण करे । शुद्धाद्वैत मत प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्यजी–जो कि ब्रह्मवाद पर प्रवचन एवं विभिन्न दर्शन-शास्त्र के पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के कारण, अपने प्रतिद्वंद्वियों द्वारा भी सर्वश्रेष्ठ एवं अद्वितीय गुरु माने गये–ने बताया कि भगवत् परायण व्यक्तियों को अपनी निष्ठा कृष्ण में ही स्थापित करनी चाहिये, क्योंकि वे ही पर ब्रह्म

हैं—'परं ब्रह्म तु कृष्णो हि' । सिद्धान्त मुक्तावली में वे स्पष्ट रूप से निश्चयपूर्वक यह घोषणा करते हैं

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामता ॥

"समस्त दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् मेरा यह सुविनिश्चित सिद्धान्त है जिसका उद्घोष मैं असंदिग्ध शब्दों में करता हूँ, कि मनुष्य को सदैव कृष्ण की ही सेवा करनी चाहिये, और उसमें भी मानसी सेवा सबसे उत्तम है ।"

अन्तःकरण प्रबोध में उनका यह कथन है—

कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्

"कृष्ण के अतिरिक्त कोई भी देवता दोषों से रहित अर्थात पूर्णानन्द नहीं है।" कृष्णाश्रय में वह बार-बार यह कहते हैं, कि कृष्ण ही समस्त जीवों के संरक्षक हैं। उपर्युक्त श्लोकों से यह स्पष्ट है कि कृष्णोपासना का सिद्धान्त–जिसका समर्थन वल्लभाचार्यजी दृढ़तापूर्वक करते हैं–कोई उनका कल्पना प्रसूत सिद्धान्त नहीं है, परन्तु धर्म-ग्रन्थों एवं दर्शन शास्त्रों के गहन अध्ययन का परिणाम है। अतः यह उचित ही होगा कि इस विषय का अध्ययन, सुविख्यात धर्म-ग्रन्थों का आश्रय लेकर तीन भागों में किया जाय। १–कृष्ण ही परं ब्रह्म हैं, २–उनके नाम का माहात्म्य, ३–शरणागति।

(१) श्रीकृष्ण ही परं ब्रह्म हैः–

(अ) वेद:—ऋग्वेद की निम्न पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं:—

कृष्णं त एमरुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषा मिदेकम् । यदप्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः ॥

'कृष्ण के रूप में हम अपने को तुम्हारी शरण में समर्पित करते हैं । रुद्र के रूप में तुम त्रिलोक संहारक हो एवं ज्ञानियों के ज्ञान के मुख्य स्रोत हो । चलने में असमर्थ श्रृंखलाबद्ध देवकी के गर्भ से अवतार लेने के पश्चात् तुमने तत्काल ही अपने को उससे पृथक् कर लिया ।

सामवेद के एक सुप्रसिद्ध कथानक के अनुसार:—

एतद्घोर आंगरिसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त वोवाचापि पिपास एव बभूव।

"अग्निगोत्र के घोर नामक ऋषि ने कहा कि देवकीपुत्र कृष्ण के प्रति अपने को समर्पित करने के पश्चात्, वह तत्काल ही संसार से प्रयाण कर गया।"

(ब) **गीता**:—श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए गीता में अर्जुन के निम्न वाक्यांश कृष्ण को परब्रह्म स्वीकार करते हुए, सार गर्भित हैं:—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
(गीता १०, १२)

'तुम ही पर ब्रह्म हो, परमधाम हो, परंम पवित्र हो, शाश्वत पुरुष हो देवताओं में प्रथम हो, अजन्मा हो, सर्वव्यापी हो।"

श्रीकृष्ण अपने संबंध में कहते हैं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह:
(गीता ६, १७)

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय (गीता ७, ७)

"मैं इस जगत का पिता हूं, माता हूं, धारक हूं एवं पितामह हूं। मेरे अतिरिक्त और मुझसे परे कोई भी वस्तु नहीं है।"

अन्यत्र श्रीकृष्ण कहते हैं:—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याऽव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(गीता १४. २७)

"मैं ही अमृत एवं अविनाशी ब्रह्म का, शाश्वत धर्म का एवं ऐकान्तिक सुख का आश्रय हूं।"

(स) **महाभारतः**—सत्य एवं पुण्य के सत्त्व स्वरूप महान् योद्धा एवं गुरू, भीष्म श्रीकृष्ण के संबंध में कहते हैं:—

एतत्परमेकं ब्रह्म एतत्परमेकं यशः
एतदृत्तरमव्यक्तमेतदेव शाश्वतं महः

"वे ही पर ब्रह्म है, पर तत्व है। वे ही अव्यक्त, अक्षर एवं शाश्वत तेज है।"

भीष्म पर्व में, भीष्म उन समस्त ऋषियों के संस्मरण प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण के संबंध में कुछ कहा है—

१–नारद—भगवान् श्रीकृष्ण समस्त लोकों के सृष्टि कर्त्ता हैं, सर्वज्ञ एवं समस्त देवताओं एवं सिद्धगणों के परम स्वामी हैं।

२–भृगु—वे देवताओं के भी देवता हैं और पुरातन विष्णु हैं।

३–व्यास—वे देवताओं के भी देव हैं।

४–संत कुमार—वे ही शाश्वत पुरुष हैं।

(द)–श्रीमद्भागवत

१–श्री वेद व्यास के अनुसार—

एते चांशकलाः पुंसःकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

(भागवत १, ३, २८)

"विभिन्न अवतार पर ब्रह्म के अंश स्वरूप हैं, जिनका आविर्भाव समय-समय पर, आसुरी ताप से पीड़ित लौकिक जीवों को आनन्द प्रदान करने के हेतु ही होता है। अन्य अवतार तो भगवत् कलावतार हैं, परन्तु कृष्ण तो स्वयं ही भगवान् हैं।

२—ब्रह्मा कृष्ण को इन मनोहारी शब्दों में संबोधित करते हुए कहते हैं:—

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
(भागवत १०, १४, ३२)

"नन्द द्वारा शासित उन व्रजवासियों का परम अहो भाग्य है, सनातन ब्रह्म एवं पूर्णानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण जिनके प्रिय एवं सुहृद हैं।"

३—रुद्र अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में देते हैं——

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्‌मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥
(१०, ६३-६४) ।

"परं ज्योतिमय वेद के रहस्य तुम ही हो । ब्रह्म (वेद नाद ब्रह्म हो) के नाम से विख्यात हो, शुद्ध बुद्धि एवं निर्मल अन्तःकरण वाले व्यक्ति तुम्हें गगन-सदृश सर्वव्यापी, एवं तुम्हारी सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करते हैं ।"

(य)—**अन्य शास्त्र**—

१—पद्‌म पुराण के अनुसार——

कृषिर्भू वाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।

“कृ” अथवा “भू” धातु वस्तुतः एक ही हैं, जिनका अभिप्राय अस्तित्व से है । “ण” का तात्पर्य निवृत्ति से है, अर्थात् जटिलताओं से रहित आनन्द है । यथार्थ सत् एवं पूर्णानन्द तो पर ब्रह्म है । जहां पर सत् एवं आनन्द है, वहीं चेतना है ।”

२–ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसारः––

महाविरारामहाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो

“हे कृष्ण, तुम महाव्रत हो एवं महाविष्णु के जन्मदाता हो, जो कि तुम्हारे ही अंश हैं ।”

३–ब्रह्म संहिता के अनुसारः––

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

"कृष्ण जो कि गोविन्द के नाम से विख्यात हैं, ही परम ब्रह्म है । उनका स्वरूप आनन्द-मयी एवं अलौकिक है । वे अनादि हैं, समस्त सृष्टि के आदि हैं, एवं समस्त कारणों के प्रमुख एकमात्र कारण हैं ।"

अन्यत्र, उसी संहिता में यह कथित है--

रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतार मकरोद्भुवनेषुकिन्तु कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ।।

'ईश्वर अपने को राम सदृश अवतारों के माध्यम से, संसार में प्रकाशित करता है । उसका पूर्णरूपेण आविर्भाव कृष्ण के रूप में हुआ । उस आदि पुरुष गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूं ।

इस ग्रन्थ की विलक्षणता अंतिम सत्य को अत्यन्त संक्षेप में अभिव्यक्त करने में निहित है। इस ग्रन्थ के उपसंहार में यह कथित है कि श्री कृष्ण ही सत्, चित् एवं आनन्द के घन स्वरूप हैं, वे पर ब्रह्म हैं, शाश्वत हैं, सबके आदि हैं और समस्त कारणों के कारण हैं।

४—चैतन्य चरितामृत:—इसके लेखक की यह असंदिग्ध घोषणा है:—

स्वयं भगवान् कृष्ण कृष्ण परतत्व
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द, परम महत्व

'कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं, कृष्ण ही परम तत्व हैं। वे सर्वज्ञ पूर्णानन्द एवं महानता की चरम सीमा हैं।' अन्त में उनका यह कथन है:—

ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान्

'परम ब्रह्म कृष्ण ही हैं, कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं।'

४–आदि शंकराचार्य के अनुसार:––

ब्रह्माण्डानि बहूनि पंकज भवान्प्रत्यंडमत्यद्भुतान्
गोपान्वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः
शंभुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्तित्रयात्
कृष्णो पृथगस्ति वै कोत्यविकृतः सच्चिन्मयी
नीलिमा ॥

'अनेक ब्रह्मांडों के पृथक-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश हैं, और सबके स्वामी महाविष्णु हैं, जो कि श्री कृष्ण के ही अंश हैं।'

अद्वैतदर्शन महारथी, परम हंस परिव्राजक, श्री मधुसूदन सरस्वती जी के शब्दों में (अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थ में तथा गीता में अंकित) भी यही समर्थन हमें प्राप्त होता है।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

'जिनके कर कमलों में बंशी सुशोभित है, जो नव जलधर वर्ण हैं। पीताम्बर धारण करने वाले प्रभु के विम्बाफल के समान जिनके ओष्ठपुष्ट है, ऐसे पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर मुखारविन्द वाले श्री कृष्ण से बढ कर मैं किसी तत्व को नहीं जानता।

'कृष्ण के वास्तविक अर्थ के लिये–जिसकी अभिव्यंजना विभिन्न स्रोतों के द्वारा विभिन्न प्रकार से हुई है–हमें नाम कौमुदी के निम्न श्लोक का अवलोकन करना होगा––

तमालश्यामलत्विषि श्रीयशोदास्तनन्धये ।
कृष्ण नाम्नोरूढिरिति सर्वशास्त्रविनिर्णयः ।

'सर्वशास्त्रों द्वारा स्वीकृत एवं परम्परागतअर्थ श्रीकृष्ण का यह है–तमाल वृक्ष के समान श्यामल वर्ण वाले यशोदानन्दन ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह निश्चयपूर्वक सिद्ध होता है कि–

१) श्री कृष्ण ही पर ब्रह्म हैं, जैसा कि श्रुति कहती है:–

'एकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् जिसका कोई द्वितीय न हो।

२—श्री कृष्ण ही पर ब्रह्म हैं, परमानन्द हैं, माया के अधिपति हैं और महानतम भगवत् आविर्भावों से भी महान हैं।

३—श्री कृष्ण ही सबके आदि हैं, सब कारणों के कारण हैं।

४—कृष्ण ही कूटस्थ ब्रह्म के साकार स्वरूप हैं। महाविष्णु भी उनके अंश हैं।

५.—एक ही समय में उनमें विरोधी लक्षण पाये जाते हैं। कोई भी वस्तु उनसे सूक्ष्म नहीं हो सकती और न बृहत् ही। 'अणोरणीयान् महतो

महीयान्'—सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म एवं विशाल से भी अति विशाल—इन दोनों विरोधी गुणों के मुख्य आधार हैं।

६—उनमें भगवान के षट् गुण चरम मात्रा में हैं:—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य, ज्ञान।

७—श्री कृष्ण भगवतावतार नहीं हैं, वरन् स्वयं भगवान हैं। वे पूर्णावतार हैं, निर्गुण ब्रह्म के सगुण स्वरूप हैं। वे इस भूतल पर ससीम होकर अवतरित हुए और वास्तविक कर्मक्षेत्र में अपूर्व एवं विलक्षण चमत्कारों (जिसका प्रदर्शन किसी भी अन्य अवतारों ने नहीं किया था) का प्रदर्शन किया।

८—वे समस्त देवताओं जैसे ब्रह्मा एवं रुद्र द्वारा पूजित हैं।

(२) कृष्ण नाम स्मरण का महत्व

श्रीमद्भागवत, गीता एवं अन्य ग्रन्थों में उनके नाम स्मरण का अद्भुत माहात्म्य स्पष्ट रूप से लक्षित है।

छठे स्कंध में यह लिखित है:—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ।।(६,२,१०)

'भगवत् नाम के अनवरत उच्चारण द्वारा समस्तवर्ग के पापियों के पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है, क्योंकि इसके द्वारा भगवान का ध्यान उच्चारक की ओर आकर्षित होता है (तत्पश्चात् उच्चारक के संरक्षक ईश्वर हो जाते हैं।'

उसी स्कंध में यह कथित है:—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः (६, २-१८)

‘ज्ञान अथवा अज्ञान-वश ईश्वर का कोई भी नाम ले लेने से मनुष्य के पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त स्थितियों में ईंधन, अग्नि में स्वाहा हो जाता है ।’

द्वादश स्कन्ध में भी ऐसी ही उक्ति है:—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ।। (१२-१२-४६)

‘अधम, गिरा हुआ, रोगी एवं छींकता हुआ मनुष्य भी विवशता में यदि ओजमय स्वरों में ‘हरि को नमस्कार है’, कहता है, तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।’

गीता:—नवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं:—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
(गीता ६, ३४)

अपना मन मुझमें स्थित कर, मेरा भक्त हो, मेरी उपासना कर, मुझे नमस्कार कर।

नारद पुराण:—

हरे केशव गोविंद वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ॥

'जो मनुष्य नित्य हरि, केशव, गोविन्द, वासुदेव एवं अन्य भगवन्नामों का उच्चारण करते हैं, उनको कलियुग हानि नहीं पहुंचा सकता है।'

स्वपन् भुंजन् व्रजन्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा ।
च्चिन्तयेद् यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

·जो प्रतिक्षण स्वप्न में चलते समय, भोजन करते समय, उठते हुए, वार्तालाप करते समय, हरि के नाम का उच्चारण करता है, मैं उसको नमस्कार करता हूं ।

महर्षि जैमिनि का कथन है:——

हृदि भावयतां भक्त्या भगवन्तमधोक्षजम् ।
यः कोऽपि दैहिको दोषो जातमात्रो विनश्यति ॥

'भक्ति ओत-प्रोत हृदय से भगवान को भजने वाले मनुष्य यदि किंचत मात्र भी दैहिक दोषों के लक्ष्य बन जाते हैं, तो वह दोष शीघ्र ही विलुप्त हो जाते हैं ।'

महात्मा भीष्म के शब्दों में:--

कृष्ण कृष्णेति जपतां न भवो नाशुभा मतिः।
प्रयान्ति मानवास्ते तु तत्पदं तमसः परम्॥

'श्री कृष्ण के नाम का जप करने वाले पुनः इस संसार में नहीं आते और और न ही उनके मन अशुभ विचारों से ग्रसित रहते हैं। वे अंधकार से परे उस परम पद को प्राप्त होते है।'

(३) शरणागतिः—

पूर्णरूपेण आत्म समर्पण की भावना—जिसका कि चरम उद्देश्य विश्वात्मा, अर्थात् प्रत्येक जीव में प्रतिष्ठित आत्मा में अन्तरनिहित आनन्द की प्राप्ति है—से गीता के उपदेश ओत-प्रोत है।

गीता का अंतिम निर्देश सब प्रकार से आत्म-समर्पण ही है। समस्त कार्यों का विनियोग इष्ट में ही होता है—वह इष्ट जो समस्त जीवों के हृदय में स्थित होकर उन कर्मों को नियंत्रित करता है। इस प्रकार के समर्पण से जीव समस्त पापों एवं दु:खों से मुक्त हो जाता है, और शाश्वत आनन्द से युक्त उस परम शांति को प्राप्त होता है।

गीता के अठारवें अध्याय में ईश्वर की शरण में जाने का स्पष्ट आदेश है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
(गीता १८-६२)

'हे भारत, सब प्रकार से उसी ईश्वर की शरण में जा, क्योंकि उसी की अनुकम्पा से तुम्हें परम

शांति एवं सनातन परम धाम की प्राप्ति होगी ।'

पुन: उसी अध्याय में यह आदेश है:--

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'मेरे में चित्त स्थिर कर, मेरा भक्त हो, मेरी उपासना कर, समस्त कर्म मुझमें समर्पित कर, मैरे को सर्वस्व समझते हुए अपने अहंभाव का सर्वनाश कर। इसके पश्चात् तुम मुझको ही प्राप्त होगे । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो ।'

'समस्त आश्रयों का परित्याग करके, मेरी शरण में आ। शोक मत कर, मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।'

विभिन्न ग्रन्थों के उपर्युक्त उद्धरणों से हम निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

१–श्रीकृष्ण ही सनातन पर ब्रह्म, सबके आदि समस्त कारणों के कारण, समस्त देवताओं के द्वारा पूजित हैं। अतः वे ही भगवान हैं, और हृदय और आत्मा द्वारा उन्हीं की उपासना होनी चाहिए।

२–उनके नाम के अनवरत उच्चारण से जीव समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। सबसे निंद्य पापी भी, इस मार्ग का अनुगमन करके अपने को लाभान्वित कर सकता है।

३—पूर्ण आत्म-समर्पण होना चाहिए। स्त्री एवं शूद्र भी इस मार्ग की शरण ले सकते हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(गीता ६-३२)

'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई होवे वे भी मेरी शरण होकर परम गति को ही प्राप्त होते हैं।

अतः, शुद्धाद्वैत, ब्रह्मवाद, पुष्टि भक्ति मार्ग प्रवर्तकाचार्य श्रीमान् महाप्रभु वल्लभाचार्यचरणों ने श्रीकृष्ण की उपासना एवं पूर्ण आत्म-समर्पण

करने से है, और 'त्र' का अर्थ संरक्षण करने से है अर्थात सांसारिक बंधन अथवा क्षणिक जीवन से मुक्ति से है । जिस प्रकार वायु से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मंत्र की शक्ति से साधक की साधना और शक्तिमान हो जाती है । मंत्र देदीप्यमान तेज का पुंज है, जो कि अलौकिक शक्तियों को जाग्रत करता है । इस मंत्र का सतत उच्चारण सृजनात्मक शक्ति का संचार और पोषण करता है, और आध्यात्मिक जीवन के प्रत्येक पहलू को शांतिमय बनाता है । यदि जीव एकाग्र चित्त से अर्थ गांभीर्य पर बुद्धि को केन्द्रीभूत करते हुए, इस मंत्र का उच्चारण करे, तो उसे भगवत् सान्निध्य का आभास सहज और शीघ्र ही होने लगेगा ।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के समय से अब तक भी वैष्णवों को दीक्षा इसी मंत्र से दी जाती है। इसे महामंत्र कहते हैं क्योंकि:—

१—यह गीता और श्रीमद्भागवत की शिक्षाओं में ही केन्द्रित है और श्रीकृष्ण ने स्वयं ही इसका आदेश किया है।

२—यह भक्त को परब्रह्म की भक्ति के चरम उद्देश्य की ओर ले जाता है, जिससे कि चरम फल की प्राप्ति होती है। दूसरी ओर देवताओं की उपासना का लाभ सीमित ही होता है।

३—यह हृदय को शुद्ध करता है, और पापों का संहार करता है।

४–श्रीमद्भागवत् में वर्णित नवधा भक्ति को प्राप्त कराने में यह सहायक है।

५–यह भक्त की प्रत्येक आवश्यकता एवं इच्छा को पूरा करता है।

इस महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर का अपना अलग महत्व है, जो निम्न प्रकार है :–

श्री : यह धन एवं समृद्धि प्रदान करता है।

कृ : यह पापों को भस्म कर देता है।

ष्ण : यह ऐहिक एवं पारिलौकिक तापों का विनाश करता है।

श : यह आवागमन के चक्र से मुक्त करता है।

र : यह भगवत् ज्ञान कराता है ।

ण : यह भगवत् भक्ति को दृढ़ करता है ।

म : भगवत् सेवा के विषय में बताने वाले
गुरु के प्रति प्रेम को प्रगाढ़ करता है ।

म : यह भगवत् सान्निध्य कराता है ।

६–जातीय धार्मिक अथवा वंश विषयक प्रतिबंध रहित, इस मंत्र का उच्चारण किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है ।

इस महामन्त्र के तीन रूप हैं :–

आधिभौतिक:–मंत्र के अक्षर आधिभौतिक है ।

आध्यात्मिक:–कृष्ण-लीला वर्णित श्रीमद्-भागवत कृष्ण रूप है, और सुबोधिनी (जो कि

श्रीवल्लभाचार्य द्वारा लिखित भाष्य है, और भागवत लीला का गूढ़ अर्थ प्रकाशित करती है) राधा रूप है। भागवत से आनन्द की प्राप्ति होती है, और सुबोधिनी से परमानन्द की, और दोनों से पूर्णानन्द की।

आधिदैविक:—कृष्ण और राधा का रसात्मक स्वरूप (अनिर्वचनीय तेज एवं सौंदर्ययुक्त ब्रजलीला धाम के प्रिय और प्रियतम, जिनके दर्शन से भक्त को असीमित आनन्द की प्राप्ति होती है)।

यह स्मरणीय है कि जप करते समय हमें अपनी दुर्बलताओं का निरंतर आभास रहे,—मन को हतोत्साहित अथवा आत्मा को निर्बल करने के हेतु नहीं अपितु दैवी सहायता से उनपर विजय

प्राप्त करने के लिये। इस अभ्यास द्वारा हम आत्म-निरीक्षण के कार्य में निपुण हो जाते हैं, और जिससे कि हमें अपने पापों की क्षुद्रता एवं हृदय का छल प्रत्यक्ष हो जाता है। सतत अभ्यास से निवेदक की आत्मा बलवती और लगन स्फूर्तिमान हो जाती है।

स्तुति की प्रवृत्ति का सृजन एवं पोषण अधिक महत्वपूर्ण है। उचित प्रकृति एवं चित्त-वृत्ति का होना आवश्यक है। अंहकारयुक्त प्रकृति एवं विनम्र प्रार्थना का संयोग हास्यास्पद ही होगा। प्रार्थना आरंभ होने के पूर्व चित्त वृत्ति का अनुकूल होना आवश्यक है। हमें अपना समस्त जीवन, उसके प्रत्येक पहलू को पावन बनाना होगा। हमें ईश्वर को अपना एकमात्र संरक्षक एवं आश्रय

समझना चाहिये, और हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया का सम्पर्क इससे होना चाहिये । स्तुति एवं कर्म में सामंजस्य और भक्ति एवं व्यवहार में संतुलन होना आवश्यक है । हमारा जीवन त्यागमय होना चाहिये । केवल जप के समय ही हमें श्रद्धायुक्त नहीं होना चाहिये । वरन जप का प्रभाव दिवस के प्रत्येक प्रभाग, प्रत्येक कार्य एवं चित्त की प्रत्येक वृत्ति में व्याप्त होना चाहिये । ईश्वर सदैव हमारे मध्य में है—इस भावना को सदैव जागरुक रखना चाहिये ।

यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि इस महामन्त्र का प्रयोग जप और कीर्तन दोनों के लिये समान रूप से हो सकता है । जप अकेले और एकांत

म होता है, परन्तु जब मंत्र अकेले अथवा भक्तों के समुदाय में, ऊंचे स्वर में बाह्य यंत्रों के साथ अथवा यों ही कहा जाता है तब उसे कीर्तन कहते हैं। उपासना पद्धति में कीर्तन का महत्वपूर्ण स्थान है। भावना का अतिरेक, असीमित प्रेम और किसी अन्य उद्देश्य का न होना कीर्तन के लिये आवश्यक है। कृपा के सदृश इसका लाभ भी द्विपक्षी है। कीर्तन करने वालों और सुनने वालों, दोनों को यह पवित्र करता है।

कीर्तन का महत्व श्रीमद्भागवत् में सुस्पष्ट है:-

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥

(भागवत १२-३-५१)

"हे परीक्षित । दोषों की निधि कलियुग में एक महान् गुण है कि श्रीकृष्ण के नाम और गुण का गान करने से, मनुष्य सब प्रकार की आसक्ति से मुक्त हो जाता है, और परब्रह्म को प्राप्त होता है ।"

पुरुषोत्तम सहस्रनाम में महाप्रभुजी कहते हैं :–

श्रोतव्यः सकलागमैः ।
कीर्तितव्यः शुद्धभावैः स्मर्तव्यश्चात्मवित्तमैः ॥

"श्रवण से वेदों का वास्तविक ज्ञान होता है, कीर्तन मन को शुद्ध करता है, और स्मरण से आत्मज्ञान होता है ।"

कीर्तन से किस प्रकार मन की शुद्धि होती है, इसका वर्णन श्रीमद् भागवत् में इस प्रकार है:–

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानांभावसरोरूहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥

“श्रोत्र पुटों द्वारा भक्तों के हृदय कमल में पहुंचकर श्रीकृष्ण उसकी समस्त कलुषताओं को दूर कर देते हैं, जैसे शरद ऋतु सरिताओं के सलिल को निर्मल कर देती है ।”

अतः श्रीहरिरायजी–महाप्रभुजी के एक सुविख्यात वंशज–असंदिग्ध शब्दों में यह उद्घोष करते हैं :––

अष्टाक्षरमहामन्त्रः कीर्तनेन विशेषतः ।

“इस महामंत्र का जप विशेष रूप से होना चाहिये ।”

उपसंहार में, हम यह कह सकते हैं कि इस

महामंत्र का प्रभाव अंततोगत्वा अन्य मंत्रों से कहीं अधिक है, क्योंकि परमब्रह्म की उपासना चरम फल प्रदायिनी होती है । गीता के नवें अध्याय में यह कहा गया है:—

यान्ति देवव्रता देवान्, पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥
(गीता ९–२५)

"देवताओं की उपासना करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं, और मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं ।

डा. राधाकृष्ण उपर्युक्त श्लोक पर अपने विचार प्रगट करते हुये कहते हैं :—

"प्रगति एवं विकास की विभिन्न अवस्थाओं में तेजोमय देवता, मृतात्मायें मनुष्यों द्वारा पूजी जाती है। परन्तु ये सब परम्‌ब्रह्म के सीमित स्वरूप हैं, और प्रगतिशील जीवों को वह शान्ति देने में असमर्थ हैं, जो बुद्धि-ग्राह्य नहीं है। उपासना का अंतिम परिणाम उपास्य स्वरूप की प्राप्ति है, और ये सीमित स्वरूप सीमित फल ही दे सकते हैं। सभी देवताओं की भक्ति इस प्रकार अपने संदर्भ में चरम फल प्रदान करने में समर्थ है। छोटे देवताओं की भक्ति का परिणाम सीमित ही होता है, और पर ब्रह्म की भक्ति चरम फल को प्रदान कराती हैं। सब प्रकार की धर्मयुक्त भक्ति अंततोगत्वा पर ब्रह्म की ही खोज है।"

श्रीविट्ठलेश प्रभु का यह निष्कर्ष इस महामंत्र

के संबंध में उचित ही है :—

आनन्द परमानन्दं सायुज्यं हरिवल्लभम् ।
यः पठेच्छ्रीकृष्णमंत्रं सर्वज्वरविनाशनम् ॥
तं हि दृष्ट्वात्रयोलोकाः पूताः स्युः किमु मानवाः ।
मध्ये च सर्व मंत्राणां मंत्रराजोत्तमोत्तमः ॥

"यह मंत्र सब प्रकार के तापों का नाश करता है, और जो भी व्यक्ति इस मंत्र का जाप करता है उसे आनन्द, परमानन्द, भगवत् सान्निध्य और हरि का प्रेम उपलब्ध होता है । इस मंत्र का जाप करने वाले मनुष्यों के दर्शन से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं । समस्त मंत्रों में यह उत्तम है, सर्व श्रेष्ठ है । वस्तुतः यह वेद, पुराणों, गीता और श्रीमद्भागवत का सार है ।

* * *